द्वेषको कैसे मोड़ें?

Reg. No. B 4448

हरिजन-सेवक

दो आना

भाग १०] संपादक : प्यारेलाल [अङ्क ३

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

अहमदाबाद, रविवार, ता० २४ फरवरी, १९४६

वार्षिक मूल्य देशमें रु० ६,
विदेशमें रु० ८; शि० १४; डॉलर ३

विषय-सूची

			पृष्ठ
राजाजीके बारेमें	...	गांधीजी	१७
उफ़! यह हमारी अंग्रेज़ी!!!	...	गांधीजी	१७
काम-काजके बीच	...	प्यारेलाल	१८
द्वेषको कैसे मोड़ें?	...	गांधीजी	२०
सवाल-जवाब	...	गांधीजी	२१
इतना तो करें ही	...	गांधीजी	२२
नासमझ बरबादी	...	गांधीजी	२३
१२५ सालकी उमर	...	गांधीजी	२३
साप्ताहिक पत्र	...	प्यारेलाल	२४
ईश्वरका अर्थ	...	गांधीजी	२४
टिप्पणियाँ			
एक बिनती	...	मो० क० गांधी	२१
लोक-सेवक और थैलियाँ	...	मो० क० गांधी	२१
बेकार खर्च	...	अ० कुँ०	२१
तारीफ़के लायक़	...	अ० कुँ०	२०
मुर्दार और ज़िन्दा सूत	...	विनोबा	१९

राजाजीके बारेमें

मैंने श्री कामराज नादारका अखबारोंको दिया बयान पढ़ा है। मुझे अफ़सोस है। मैं आसानीसे चुप रह सकता था, किन्तु उससे कामको नुक़सान पहुँच सकता है। वह कहते हैं कि वह मेरे अनुयायी हैं। उस हालतमें उनको अख़बारमें अपना बयान छपानेसे पहले और निश्चय ही इस्तीफ़ा देनेके पहले मुझसे पूछना चाहिये था। मैंने इरादतन् अपनेको 'भंगी' कहा है। आदमीने समाजकी जो सीढ़ियाँ बना रक्खी हैं, उनमें मैं नीचे-से-नीचे रहना चाहता हूँ। मैं श्री कामराजसे चाहूँगा कि वह नादार न रहें और मेरे साथ भंगी बन जायँ, और पूरी विनयके साथ अपना इस्तीफ़ा वापस ले लें। कांग्रेस-विधानके अनुसार ऐसा किया जा सकता है या नहीं, इसका फ़ैसला तो प्रान्तीय और अखिल भारतीय कार्यकारिणी समितियाँ ही कर सकती हैं। अगर वह समझते हों कि इस्तीफ़ा देकर उन्होंने अपनी और कामकी हानि की है, तो नैतिक दृष्टिसे इस्तीफ़ा वापस लेनेमें कोई रुकावट नहीं हो सकती। उस हालतमें, अगर विधानके मुताबिक़ वैसा मुमकिन हो, तो वह एक मज़बूत आदमीकी हैसियतसे उस मुश्किल ओहदेको फिरसे सँभाल लेंगे। इस्तीफ़ा देकर उन्होंने कमज़ोरी दिखाई है। वह कहते हैं कि उन्होंने चार दूसरे साथियोंको इस्तीफ़ा नहीं देने दिया। यह अच्छा हुआ कि उन्होंने इस्तीफ़े नहीं दिये।

'क्लीक' यानी गुट्ट शब्दके इस्तेमाल पर इतनी परेशानी क्यों? अंग्रेज़ी ज़बानके अपने सारे प्रेमके बावजूद वह मेरे लिए एक विदेशी ज़बान है और मैं उसके शब्दोंका इस्तेमाल करनेमें ग़लती कर सकता हूँ। बेशक मैंने 'क्लीक' शब्दका जान-बूझकर इस्तेमाल किया है। मैं उसको वापस नहीं लूँगा। शब्दकोषमें उसका यह मतलब दिया गया है: 'एक छोटा खास दल'। मैं जानता हूँ कि तामिलनाडमें राजाजीके ख़िलाफ़ ऐसा एक दल या गुट्ट है। मैं उसके किसी एक आदमीका निश्चयके साथ नाम नहीं ले सकूँगा। किसीको भी 'चोरकी दाढ़ीमें तिनका' वाली मिसाल साबित न करनी चाहिये। दुनियाके अच्छे-से-अच्छे संगठनोंकी तरह कांग्रेसमें भी कई छोटे-छोटे दल हैं। ऐसे दलोंकी तादाद जितनी ही कम होगी, उतना ही उस संगठनके लिए अच्छा होगा।

दक्षिणके मेरे उस दौरेमें मुझे वह चुनौती न दी गई होती, तो मैं चुप ही रहा होता।

मुझे मानना पड़ेगा कि स्पेशल रेलगाड़ीमें मेरे साथ जो लोग थे, उनसे मैंने बातचीत नहीं की। मैं काममें डूबा हुआ था। ठहरनेके मुक़ामों पर सभाओंमें जाना पड़ता था और चलती रेलगाड़ीमें लिखना पड़ता था। जनता यह जान ले कि जो लोग रात-दिन मेरे साथ ही रहते हैं, उन्हें भी इतनी सख़्तीसे काम लेना पड़ता है कि वे नज़दीक आकर मेरे काममें रुकावट नहीं डालते। मेरे तूफ़ानी जीवनमें ऐसा ही होता आया है। मैं अपने ख़ुदके बच्चोंको भी बहुत थोड़ा वक़्त दे पाया हूँ। श्री अरुणा आसफअली इतने अरसे तक छिपी रहनेके बाद दो दिनके लिए मुझसे मिलने आई थीं; मगर उन्होंने इतनी सहनशीलता दिखाई कि मेरे घूमनेके वक़्तमेंसे जितना वह ले सकीं, उतनेसे ही उन्होंने काम चला लिया। सेवाग्राम, १५-२-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

उफ़! यह हमारी अंग्रेज़ी!!!

कितना अच्छा होता, अगर हमारे अख़बार हमारी अपनी ज़बानोंमें ही निकलते होते! उस हालतमें हमारी हालत उन अन्धोंकी-सी न होती, जिनमेंसे एक हाथीकी पूँछको हाथी समझता था, दूसरा उसके दाँतोंको, तीसरा सूँड़को और चौथा पैरको! सबको अपनी अक़्लमन्दीका ग़रूर था, मगर असलमें सभी ग़लती पर थे। इसी तरह, मैंने भी अपने ग़रूरमें कहा था और फिर कहता हूँ कि राजाजीका विरोध एक गुट्ट तक ही सीमित था और है। मेरे एक बुज़ुर्ग दोस्तका और दूसरोंका कहना है कि विरोधको गुट्टका नाम देकर मैंने बड़ी ग़लती की है। मैंने जिस विशेषणका प्रयोग किया है, वह कांग्रेस-संस्थाके लिए नहीं था, न हो सकता है; फिर वह संस्था प्रान्तकी हो या अखिल भारतीय हो या और कोई हो, क्योंकि कांग्रेस तो राजाकी तरह कोई ग़लती कर ही नहीं सकती। ग़लती तो कोई गुट्ट ही आम तौर पर करता है। लेकिन इसमें शक नहीं कि मैं और मेरे टीकाकार दोनों सही हैं; अलबत्ता, अपने-अपने ढंगसे, और दोनों ग़लत भी हैं। पराई ज़बानके एक शब्दका इस्तेमाल करने पर यह इतना बड़ा झमेला खड़ा हो गया है! अगर मैंने राष्ट्रभाषामें या मेरी अपनी गुजरातीमें लिखा होता, तो हम एक शब्दके प्रयोग पर उलझे न होते। राजाजीके इस क़िस्सेको मैं यह कहकर खतम किया चाहता हूँ कि अगर मैंने गुट्ट या 'क्लीक' शब्दका ग़लत इस्तेमाल किया है, या राजाजीको ग़लत समझा है, तो इसमें किसीको मेरा अनुसरण करनेकी ज़रूरत नहीं। मेरे हाथमें कोई क़ानूनी हुकूमत नहीं। अगर मैंने ग़लत समझा या कहा है, तो इसमें नुक़सान मेरा अपना ही है, क्योंकि उससे मेरा जो नैतिक बल है, उसे मैं बहुत हद तक या कुछ हद तक खो बैठूँगा।

लेकिन अभी, इस वक़्त तो मुझे उन रिपोर्टरसे झगड़ना है, जिन्होंने गो-सेवा-संघकी सभामें दी गई मेरी तकरीर (भाषण)का अंग्रेज़ीमें तरजुमा

www.vinoba.in

की जा सकती है और लोग युक्ताहारी बन सकते हैं । मैं ख़ुद तो अपनी आशावादिताको छोड़ नहीं सकता । हाँ, यह क़बूल किये लेता हूँ कि ताली एक हाथसे नहीं बजती । इस काममें सरकार और जनता दोनोंके सहयोगकी ज़रूरत है । दोनोंमें आपसका यह सहयोग न हुआ तो विदेशोंसे अनाज या खाद्यपदार्थोंके आने पर भी उनके बेकार खर्च हो जानेका अंदेशा है । असलमें वह जिन्हें मिलना चाहिये उन्हें नहीं मिलेगा; बल्कि हम जो पहले ही पराधीन हैं और भी ज्यादा पराधीन बन जायँगे । आशा न रखते हुए भी बाहरसे जो अनाज आ पहुँचेगा, उसे हम फेंक नहीं देंगे, बल्कि उसे ले लेंगे और उसके लिए एहसानमंद रहेंगे । इस तरह बाहरसे अनाज मँगाना सरकारका परम धर्म है। लेकिन सरकारकी ओर टकटकी लगाकर बैठनेमें या दूसरे देशों पर आधार रखनेमें मैं कोई श्रेय नहीं देखता; यही नहीं, बल्कि रक्खी हुई आशाके सफल न होने पर लोगोंमें जो निराशा पैदा होगी, वह इस संकटके समयमें उनके लिए हानिकारक होगी । लेकिन अगर जनता इस कठिन समयमें एकमत हो जाय, दृढ़ बन जाय, केवल ईश्वर पर ही भरोसा रखनेवाली बन जाय, और सरकारका जो भी काम उसे स्वतंत्र रीतिसे कल्याणकारी मालूम हो, उसका विरोध न करे, तो जनताके लिए नाउम्मीदीकी कोई वजह न रह जाय, वह आगे बढ़े, और इस भट्टीमेंसे उजली होकर निकले। और, दूसरे देशोंसे, जहाँ-जहाँ अनाज बच सकता है, बचा हुआ अनाज अपने-आप यहाँ आ सकता है । अंग्रेज़ीमें एक बढ़िया कहावत है कि जो अपनी मदद ख़ुद करते हैं यानी स्वावलम्बी बनते हैं, उनकी मदद तो स्वयं ईश्वर भी करता है, औरोंका तो पूछना ही क्या ? मतलब यह कि बाहरसे आनेवाला अनाज बिना माँगे यहाँ आ सकेगा । यहाँ यह कहनेकी ज़रूरत नहीं कि जब अंग्रेज़ हाकिमोंने हिन्दुस्तानमें जो भी कुछ था, सो सब खाली कर डाला, और उसीका यह नतीजा आज हमें भोगना पड़ रहा है, तो अब सरकारका और जिनकी उसने मदद की थी, उन सबका यह धर्म ही है कि वे इस वक़्त अपना फ़र्ज़ अदा करें ।

स० — देशमें रूई कम है । अफ्रीका और अमेरिकासे आती है । यहाँ किसानोंको कपास बोने नहीं दी जाती । वजह यह बताई जाती है कि ज्यादा अनाज पैदा करना चाहिये ।

ज० — जिन्हें अपने घरेलू खर्चके लिए रूईसे सूत कात लेना है, उन पर यह क़ानून आयद नहीं होता, न होना चाहिये । जो रूई पैसा कमानेके लिए बोई जाती है, उस पर इस क़ानूनका आयद होना समझा जा सकता है और मेरे खयालमें यह उसी पर लगाया जा सकता है । रूईको व्यापारकी चीज़ बनानेका महान् पाप सरकारने किया है । अब बाहरसे रूई मँगाकर वह इस पापको न सिर्फ़ धो नहीं सकती, बल्कि दोहरा पाप ओढ़ लेती है । मेरे विचारमें लंकाशायर भेजनेके लिए रूईको बनावटी तौर पर तिजारतकी चीज़ बनाना ही ग़लत था । अनाज उगानेकी ग़रज़से किसी एक ही जगहमें ढेरों कपास पैदा करने पर रोक लगाई जाय, तो वह समझी जा सकती है । लेकिन इसका हल यह नहीं है कि कपासकी बुवाई बिलकुल बन्द कर दी जाय और बाहरसे रूई मँगाई जाय। यह पाप तो तभी धुल सकता है कि जब जहाँ-जहाँ संभव हो, लोगोंको उनके अपने उपयोगके लिए कपास पैदा करनेकी छूट दी जाय । मिलोंके लिए बाहरसे रूई मँगानेकी नीति समझमें आ सकती है, सही जा सकती है, लेकिन इस नीतिके सिलसिलेमें अगर लोग अपने खेतके कुछ हिस्सेमें अपनी ज़रूरतकी कपास नहीं बो सकते, तो यह एक ऐसी बात है जो समझमें नहीं आ सकती; यही नहीं, बल्कि यह तो घोर विरोधकी चीज़ बन जाती है । जनता और सरकार दोनोंको इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये ।

('हरिजनबंधु'से)   मोहनदास करमचंद गांधी

इतना तो करें ही

यह मानकर चलना चाहिये कि हमको अनाजके संकटका सामना करना पड़ेगा । ऐसी हालतमें हमको नीचे लिखी बातें तो फ़ौरन शुरू कर देनी चाहिये :—

१. हरएक आदमीको अपने खाने-पीनेकी ज़रूरत कम-से-कम कर लेनी चाहिये; वह इतनी होनी चाहिये कि उसकी तन्दुरुस्ती क़ायम रह सके । शहरोंमें जहाँ दूध, साग-सब्ज़ी, तैल और फल मिल सकते हैं, वहाँ अनाज और दालोंका इस्तेमाल घटा देना चाहिये । ऐसा आसानीसे किया जा सकता है । अनाजोंमें पाया जानेवाला स्टार्च या निशास्ता गाजर, चुकन्दर, आलू, अरुई, रतालू, ज़मींकन्द, केला वग़ैरा चीज़ोंसे मिल सकता है । खयाल यह है कि उन अनाजों और दालोंको, जिन्हें इकट्ठा करके रक्खा जा सके, मौजूदा ख़ुराकमें शामिल न किया जाय और उन्हें बचाकर रक्खा जाय । साग-सब्ज़ी भी मौज-मज़े और स्वादके लिए न खानी चाहिये, खासकर ऐसी हालतमें कि जब लाखों लोगोंको वे बिलकुल ही नसीब नहीं होतीं और अनाज तथा दालोंकी कमीकी वजहसे उनके भूखों मरनेका खतरा पैदा हो गया है ।

२. हरएक आदमी, जिसे पानीकी सहूलियत मिल सकती हो, अपने लिए या आम लोगोंके लिए कुछ-न-कुछ खानेकी चीज़ पैदा करे । इसका सबसे आसान तरीक़ा यह है कि थोड़ी साफ़ मिट्टी इकट्ठा कर ली जाय, जहाँ मुमकिन हो, उसके साथ थोड़ी सजीव खाद मिला ली जाय — थोड़ा सूखा हुआ गोबर भी अच्छी खादका काम देता है — और उसे मिट्टीके या टीनके गमलेमें डाल दिया जाय । फिर उसमें साग-भाजीके कुछ बीज, जैसे राई, सरसों, धनिया, मेथी, पालक, बथुआ वग़ैरा बो दिये जायँ और उन्हें रोज़ पानी पिलाया जाय । लोगोंको यह देखकर ताज्जुब होगा कि कितनी जल्दी बीज उगते हैं और खाने लायक़ पत्तियाँ देने लगते हैं, जिनको बिना पकाये कच्चा ही सलाद या चटनीकी तरह खाया जा सकता है ।

३. फूलोंके तमाम बग़ीचोंमें खानेकी चीज़ें उगाई जानी चाहिये । इस बारेमें मैं यह सुझाना चाहूँगा कि वाइसराय, गवर्नर और दूसरे ऊँचे अफ़सर मिसाल पेश करें । मैं केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंके खेतीके महकमोंके मुखियाओंसे कहूँगा कि वे प्रान्तीय भाषाओंमें अनगिनत पर्चे छपवा कर बाँटें और साधारण आदमियोंको समझायें कि कौन-कौनसी चीज़ें आसानीसे पैदा की जा सकती हैं ।

४. सिर्फ़ आम लोग ही अपनी ख़ुराकको न घटावें, बल्कि फ़ौजवालोंको भी चाहिये कि वे ज्यादा नहीं तो आम लोगोंके बराबर अपनी ख़ुराकमें कमी करें। सेनाके आदमी सैनिक अनुशासनमें होनेके कारण आसानीसे किफ़ायत कर सकते हैं, इसलिए मैंने सेनासे ज्यादा कमी करनेकी बात कही है।

५. तेलहनकी और तैल व खलीकी निकासी अगर बन्द न की गई हो तो फ़ौरन बन्द कर दी जानी चाहिये । यदि तेलहनमेंसे मिट्टी और कचरा वग़ैरा अलग कर दिया जाय, तो खली इन्सानके लिए अच्छी ख़ुराक बन सकती है। उसमें काफ़ी पोषक तत्त्व होता है ।

६. जहाँ मुमकिन और ज़रूरी हो, सिंचाईके लिए और पीनेके पानीके लिए सरकारको गहरे कुएँ खुदवाने चाहिये ।

७. अगर सरकारी नौकरों और आमजनताकी तरफ़से सच्चा सहयोग मिले, तो मुझे इसमें ज़रा भी शक नहीं कि देश इस संकटसे पार हो जायगा । जिस तरह घबरा जाने पर हार यक़ीनी हो जाती है, उसी तरह जहाँ व्यापक संकट आनेवाला हो, वहाँ फ़ौरन कार्रवाई न की जाय, तो धोखा हुए बिना न रहे। हम इस मुसीबतके कारणों पर विचार न करें। कारण कुछ भी हों, सचाई यह है कि अगर सरकार और जनताने संकटका धीरज और हिम्मतसे सामना नहीं किया, तो बरबादी निश्चित है । इस एक मोर्चेको छोड़कर हम और सब मोर्चों

www.vinoba.in

पर सरकारसे लड़ेंगे, और अगर सरकार हृदयहीनतासे काम ले या उचित लोकमतको ठुकराये, तो इस मोर्चे पर भी हमको उससे लड़ना होगा। इस बारेमें मैं जनताको मेरी इस रायसे सहमत होनेके लिए कहूँगा कि हम सरकारकी बातको जैसा वह कहती है, वैसा ही मान लें, और समझें कि स्वराज्य कुछ ही महीनोंमें मिल जानेवाला है।

८. सबसे ज़रूरी चीज़ यह है कि चोर बाज़ारोंका और बेईमानी व मुनाफ़ाखोरीका तो बिलकुल ख़ात्मा ही हो जाना चाहिये, और जहाँ तक आजके इस संकटका सवाल है, सब दलोंके बीच दिली सहयोग होना चाहिये।

सेवाग्राम, १४-२-'४६ मोहनदास करमचंद गांधी

('हरिजन'से)

नासमझ बरबादी

अखिल भारत-ग्राम-उद्योग-संघके श्री झवेरभाई पटेल, जो अपने विषयके जानकार हैं, लिखते हैं:

"बर्मासे चावलोंका आना बन्द हो जानेके बादसे हिन्दुस्तानमें चावलकी बेहद कमी हो गई है। चावलकी इस कमीको पूरा करनेके लिए चावलोंको एक हदके बाद पॉलिश करनेकी मुमानियत कर दी गई। अगर पॉलिश करनेकी बिलकुल ही मुमानियत कर दी गई होती तो बर्मासे आनेवाले चावलोंके बन्द हो जाने के कारण पैदा हुई कमी जरूर पूरी हो गई होती। हिन्दुस्तानमें जितना चावल पैदा होता है, उसका सिर्फ़ ५ फ़ी सदी बर्मासे आता था, जबकि पॉलिश करनेसे नुक़सान १० फ़ी सदी होता है। कुछ तो लोगोंकी आदतको एकदम बदल डालना मुश्किल होता है, और कुछ मौजूदा सरकार लोकमतको तैयार करके उसे अपने साथ नहीं रख सकती, इसलिए वह यह तरीक़ा जारी न कर सकी। लेकिन इससे भी ज्यादा खराबीकी बात यह हुई कि लोगोंका समझा-बूझा सहयोग न मिलनेके कारण सरकारका यह अधूरा उपाय भी बेकार गया। जबसे सरकारने कम पॉलिश किया चावल देना शुरू किया, चावल खानेवालोंने राशनके चावलको पॉलिश करवाना शुरू कर दिया। मैंने हालहीमें गुजरातमें देखा है कि गोला जातिकी औरतें घर-घर जाकर मजदूरी पर चावल कूटनेका काम करने लगी हैं। ईधर यह एक आम रिवाज बन गया है। गृहस्थीमें काम आनेके लिए लकड़ीके ऊखलों और मूसलोंकी बिक्री भी खूब हो रही है। बम्बई-जैसे बड़े शहरोंमें, जहाँ जगहकी कमीकी वजहसे लकड़ीके ऊखल और मूसल काममें नहीं लिए जा सकते, औरतें लोहेके सँभलने लायक़ ऊखल-मूसल काममें लेती हैं। लकड़ीके ऊखल-मूसलसे पॉलिश करनेकी हालतमें चावलकी मिक़दार औसतन क़रीब पाँच फ़ी सदी कम हो जाती है और लोहेके ऊखल-मूसलसे होनेवाली कमीकी तो कोई सीमा ही नहीं है; वह कभी-कभी ३० फ़ी सदी तक पहुँच जाती है। ऐसे परिवार थोड़े ही होंगे जो राशनमें मिलनेवाले चावलोंको उसी रूपमें खाते हों। इसका नतीजा पहलेके बाक़ायदा पॉलिश किये हुए चावलोंसे भी ज्यादा ख़राब हो रहा है।

"हम अपनी ख़ूराकमें बिना पॉलिशका पूरा चावल काममें लेने लगें, इसका सबसे कारगर तरीक़ा यह है कि हम अपनी बहनोंको आहार-शास्त्र सिखायें।"

यह बात बिलकुल सही है कि यह ज़रूरी सुधार हम अपनी बहनोंको शिक्षा देकर ही जल्दी करवा सकते हैं। हमें उनको यह शिक्षा देनी होगी कि किस तरह पकाने पर हम अपने भोजनके पोषक तत्त्वोंकी रक्षा कर सकते हैं। यह शिक्षा कैसे दी जाय, यह एक गम्भीर सवाल है। अखबारों और सभाओंके अलावा स्कूल और कॉलेज इस शिक्षाके शायद सबसे ज्यादा तैयार साधन हो सकते हैं। अगर लोगोंको अपने-आपको और करोड़ों भूखोंको इस नाजुक समयमें बचाना है, तो अखबारों और सभाओंके ज़रिये यह तात्कालिक ज़रूरत पूरी की जानी चाहिये।

सेवाग्राम, १७-२-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

१२५ सालकी उमर

एक सौ पच्चीस साल जीनेकी बात मैंने बिना सोचे नहीं कही थी। उसमें रहस्य था। मेरा आधार ईशोपनिषद्का नीचे लिखा मंत्र है:

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि, जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे॥"

इसका शब्दार्थ इस प्रकार है: सेवाकार्य यानी निष्काम कर्म करते हुए मनुष्य सौ साल जीनेकी इच्छा रक्खे। सौ साल यानी १२५ बरस, इस आशयकी एक टीका मैंने पढ़ी थी। आज भी मद्रासमें कुछ लोग सौका अर्थ ११६ करते हैं। मुझे सौ रुपये दिये गये, लेकिन असलमें वे ११६ थे। सौको निन्यानवे+एककी रीतिसे गिननेका कोई अचूक रिवाज हमारे देशमें नहीं है। बात ऐसी हो, चाहे न हो, यहाँ उससे कोई बहुत निस्बत नहीं। भले, सौका मतलब एक पर दो शून्य ही हो।

मुझे तो सिर्फ़ इच्छापूर्तिकी शर्त बतानी है। निष्काम सेवाकार्य करते हुए यानी अनासक्त भावसे रहते हुए लम्बी उमर तक जीनेकी इच्छा रखनी चाहिये। ऊपरके मंत्रसे मैं यह भावार्थ निकालता हूँ कि इसके बिना जीनेकी इच्छा की नहीं जा सकती। मुझे इस बारेमें ज़रा भी शक नहीं कि अगर अनासक्त न हुआ जाय, तो सवा सौ साल जिया ही नहीं जा सकता। आदमीकी आँखें टिम-टिमाती रहें और वह पलंग पर मुर्देकी तरह पड़ा रहे, तो वह दूसरों पर बोझ बन जाता है और तब उसका यह धर्म हो जाता है कि वह ज्यों-त्यों जीनेके बदले ईश्वरसे अपने लिए जल्दी मौत माँग ले। मनुष्यकी देह भोगके लिए हरगिज़ नहीं है, मात्र सेवाके लिए है। त्यागमें रहस्य है, जीवन है। भोगमें मृत्यु है। निष्काम सेवा करते हुए सबको सवा सौ साल जीनेका अधिकार है, सबको यह इच्छा रखनी चाहिये। ऐसे आदमीका समूचा जीवन सिर्फ़ सेवाके लिए होगा। इस सेवामें, इस सेवाके लिए किये गये त्यागमें सम्पूर्ण रस रहा है। इस रसको कोई छीन नहीं सकता, क्योंकि यह अमृतरस हृदयमेंसे झरता है और पोषण पहुँचाता है। ऐसे जीवनमें आतुरता या चिन्ताको कोई स्थान नहीं। उसमें अपूर्व आनन्द है। इस आनन्दके बिना मैं दीर्घजीवनको असम्भव मानता हूँ, और वह सम्भव भी हो तो निरर्थक है।

इससे यह साफ़ हो जाता है कि शर्तका पालन न हो, तो सवा सौ बरस जीनेकी आशा या इच्छा आकाशपुष्पको पानेकी आशा या इच्छाके समान है। मुमकिन है कि बाहरी उपायोंसे लम्बी उमर तक जिया जा सके, लेकिन वैसे जीवनको इस विचारधारामें कहीं कोई स्थान नहीं।

सेवाग्राम, ११-२-'४६

('हरिजनबंधु'से) मोहनदास करमचंद गांधी

ग्राहकों और एजण्टोंसे

ड्राफ्ट और पोस्टल ऑर्डर **व्यवस्थापक, हरिजन-सेवक**के नाम भेजें, किसी व्यक्तिके नाम नहीं। पोस्टल ऑर्डर इस तरह भेजें कि उसका रुपया **अहमदाबाद पोस्ट ऑफिस**से मिल सके।

हमारी बम्बई (१३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट), पूना (२९९, सदाशिव पेठ), सूरत (कणपीठ बाज़ार) और राजकोट (सर लाखाजीराज रोड)की शाखाओंके सिवा दूसरे किसी व्यक्ति, संस्था या एजण्टको हमारी तरफ़से चन्दा वसूल करनेका अधिकार नहीं दिया गया है।

एजण्ट कृपया इस बातका ध्यान रक्खें कि **हरिजन-सेवक**की प्रतियों पर छपी क़ीमतसे ज्यादा क़ीमत वे ले नहीं सकते। अगर यह नियम तोड़ा गया, तो उनकी एजन्सी रद कर दी जायगी। खरीदारोंसे प्रार्थना है कि वे छपी हुई क़ीमतसे ज्यादा क़ीमत न देकर हमारे साथ सहयोग करें और अगर कोई ज्यादा क़ीमत माँगे, तो हमें उसकी इत्तिला करें।

नमूनेकी प्रतिके लिए तीन आनेके डाक-टिकट भेजने होंगे।

व्यवस्थापक

www.vinoba.in

हरिजन-सेवक

फरवरी २४　　१९४६

द्वेषको कैसे मोड़ें ?

हवामें द्वेष छा गया है और अधीर देशभक्त, अगर वैसा मुमकिन हो तो, आज़ादीके मक़सदको आगे बढ़ानेके लिए हिंसाके ज़रिये भी उसका खुशीसे उपयोग कर लेना पसन्द करेंगे। मेरा कहना यह है कि यह बात किसी भी वक़्त और हर कहीं ग़लत होगी। मगर जिस देशमें आज़ादीके लिए लड़नेवालोंने दुनियाके आगे यह घोषित किया है कि उनकी नीति सत्य और अहिंसाकी नीति है, वहाँ तो ऐसा करना और भी ग़लत और नामुनासिब होगा। उनका कहना है कि द्वेषको मुहब्बत यानी प्यारमें नहीं बदला जा सकता। जो लोग हिंसामें मानते हैं, वे सहज ही यों कहकर इसका उपयोग करेंगे: 'अपने दुश्मनको मार डालो, उसे और उसकी सम्पत्तिको ज़रूरतके मुताबिक़ खुले तौर पर या छिपकर, जैसे भी मुमकिन हो, नुक़सान पहुँचाओ।' इसका नतीजा यह होगा कि द्वेष और गहरा होता जायगा, द्वेषके बदले द्वेष पैदा होगा और दोनों तरफ़से बदलेका दौरदौरा होगा। पिछला महायुद्ध, जिसकी चिनगारियाँ अभी पूरी तरह ठण्डी नहीं पड़ी हैं, द्वेषके प्रयोगके दिवालियेपनकी ज़ोरोंसे घोषणा कर रहा है। और अभी यह देखना बाक़ी ही है कि कथित विजेता सचमुचमें विजयी हुए हैं या कि अपने दुश्मनोंको गिरानेकी चाह और कोशिशमें ख़ुद ही गिर नहीं गये हैं। आखिर यह एक बुरा खेल है। इस देशके कुछ कर्मठ विचारक कामके तरीक़ेमें कुछ सुधार सुझाते हुए कहते हैं: 'हम अपने दुश्मनको तो कभी नहीं मारेंगे, मगर उसकी सम्पत्तिको ज़रूर बरबाद करेंगे।' जब मैं यह कहता हूँ कि यह 'उसकी सम्पत्ति' है, तो मैं शायद उसके साथ अन्याय करता हूँ; क्योंकि यह ध्यान देनेकी बात है कि कथित शत्रु साथमें अपनी कोई सम्पत्ति नहीं लाया है और जो थोड़ी-बहुत लाया भी है, तो उसकी हमसे क़ीमत वसूल करता है। इसलिए जिसे हम बरबाद करते हैं, दरअसल तो वह हमारी ही सम्पत्ति है। उसका ज़्यादातर हिस्सा, चाहे वह आदमियोंकी सूरतमें हो या चीज़ोंकी, वह यहीं पैदा करता है। इसलिए जो बात है, वह यही कि सम्पत्ति पर उसका क़ब्ज़ा है। इस सम्पत्तिकी बरबादीका मुआवज़ा हमको नाकके बल देना पड़ता है, और बेगुनाहोंको उसकी क़ीमत चुकानी पड़ती है। ताज़ीरी टैक्स या दण्डात्मक कर और उससे जुड़ी हुई ज़्यादतियोंका यही मतलब होता है। इसलिए वह अहिंसा, जिसमें केवल किसीको न मारना ही शामिल हो, मुझे हिंसात्मक तरीक़ेसे बेहतर नज़र नहीं आती। उसका मतलब है, धीरे-धीरे सताना। और जब यह धीमापन बेकार हो जायगा, तो हम फ़ौरन मारने पर उतारू हो जायँगे और परमाणु बमका इस्तेमाल करने लगेंगे, जोकि आज हिंसाका आखिरी हथियार है। इसलिए सन् १९२० में मैंने द्वेषको ठीक दिशामें मोड़नेके लिए अहिंसाका और उसके लाज़िमी जोड़ीदार सत्यका प्रयोग सुझाया था।

द्वेष करनेवाला द्वेषकी खातिर द्वेष नहीं करता, यानी इसलिए करता है कि वह द्वेषपात्र आदमी या आदमियोंको अपने देशसे हँकाल देना चाहता है। इसलिए वह हिंसक तरीक़ेकी तरह अहिंसक तरीक़ेसे भी अपना मक़सद हासिल कर लेगा। पिछले २५ वर्षोंसे, राज़ीसे या नाराज़ीसे, कांग्रेस अपनी खोई हुई आज़ादीको हासिल करनेके लिए जनताके सामने हिंसाके मुक़ाबले अहिंसाकी हिमायत करती रही है। हमने जो तरक़्क़ी की है, उससे हमने यह देख लिया है कि अहिंसाके ज़रिये हम जितनी जल्दी और जितना ज़्यादा जनताके दिलको जगा सके हैं, उतना पहले कभी नहीं कर सके थे। फिर अगर सच कहें तो — और सच तो कहना ही चाहिये — हमारी अहिंसक कार्रवाई अधकचरी ही रही है। कइयोंने दिलमें हिंसाको छिपाये रखकर केवल ज़बानसे अहिंसाका उपदेश किया। किन्तु सीधी-सादी जनताने हमारे दिलोंमें छिपे हुए भावोंका मतलब समझ लिया और उसकी अनजानी प्रतिक्रिया वैसी नहीं हुई, जैसी होनी चाहिये थी। दम्भने सद्गुणकी प्रशंसा तो की, किन्तु वह सद्गुणकी जगह हरगिज़ नहीं ले सकता था। इसीलिए मैं अहिंसा पर और उससे भी ज़्यादा अहिंसा पर ज़ोर देता रहता हूँ। मैं अज्ञानवश ऐसा नहीं करता, बल्कि उसके पीछे मेरे साठ सालका अनुभव है। यह नाज़ुक वक़्त है। आज जनता भूखों मर रही है। देशकी मौजूदा ज़रूरतोंमें अहिंसाका प्रयोग किस तरह किया जाय, बुद्धिमान पाठकको इसके अनेक उपाय सूझ जायँगे।

आज़ाद हिन्द फ़ौजका जादू हम पर छा गया है। नेताजीका नाम जपने लायक़ बन गया है। उनकी देशभक्ति किसीसे कम नहीं है। (वर्तमानकालका उपयोग मैं जान-बूझकर कर रहा हूँ।) उनकी बहादुरी उनके सारे कामोंमें चमक रही है। उनका मक़सद बुलन्द था, पर वह नाकामयाब रहे। नाकामयाब कौन नहीं रहा? हमारा काम तो यह देखना है कि हमारा मक़सद बुलन्द हो और हम नेक मक़सद रखें। सफलता यानी कामयाबी हासिल कर लेना हर किसीकी क़िस्मतमें नहीं लिखा होता। इससे ज़्यादा तारीफ़ मैं नहीं कर सकता, क्योंकि मैं जानता था कि उनका काम विफल होने ही वाला है, और अगर वह अपनी आज़ाद हिन्द फ़ौजको विजयी बनाकर हिन्दुस्तानमें ले आये होते, तो भी मैंने यही कहा होता, क्योंकि इस तरह आमजनता अपने अधिकारोंको न पा सकी होती। नेताजी और उनकी फ़ौज हमको जो सबक़ सिखाती है, वह तो त्यागका, जात-पाँतके भेदसे रहित एकताका और अनुशासनका सबक़ है। अगर उनके प्रति हमारी भक्ति समझदारीकी और विवेकपूर्ण होगी तो हम उनके इन तीनों गुणोंको पूरी तरह अपनायेंगे, लेकिन हिंसाका तो बिलकुल त्याग ही करेंगे।

मैं यह नहीं चाहूँगा कि आज़ाद हिन्द फ़ौजका आदमी यह सोचे या कहे कि वह या उसके साथी हिन्दुस्तानकी जनताको हथियारोंके ज़रिये ग़ुलामीसे छुटकारा दिलवा सकते हैं। लेकिन अगर वह नेताजीका और उनसे भी ज़्यादा देशका वफ़ादार है, तो वह जनताको — स्त्री, पुरुष और बच्चोंको — बहादुर बनने, त्याग करने, और एक हो जानेकी शिक्षा देनेमें अपनी ताक़त ख़र्च करेगा। तभी हम दुनियाके आगे कमर सीधी करके खड़े हो सकेंगे। लेकिन अगर वह केवल हथियारबन्द सैनिक ही बना रहा, तो वह जनताके सिर पर सवारी ही गाँठेगा और तब उसके स्वयंसेवकपनेकी कोई ज़्यादा क़ीमत नहीं रह जायगी। इसलिए मैं कप्तान शाहनवाज़के इस बयानका स्वागत करता हूँ कि नेताजीके योग्य अनुयायी बननेके लिए, हिन्दुस्तानकी धरती पर आनेके बाद, वह कांग्रेसकी सेनामें एक विनीत, अहिंसक सिपाही बनकर काम करेंगे।

सेवाग्राम, १५-२-'४६　　मोहनदास करमचंद गांधी

('हरिजन' से)

तारीफ़के लायक़

दक्षिण भारत-हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी रजत जयन्तीके मौक़े पर मद्रासके कई व्यापारियोंने शिविरमें सब प्रतिनिधियोंके खाने-पीनेका इन्तज़ाम अपने हाथमें ले लिया था। २३ जनवरीसे लेकर १ फरवरी तक यह काम उन्होंने बहुत अच्छी तरहसे चलाया। ५०,००० लोगोंको खिलाना छोटी बात नहीं। भोजन अच्छा था और सफ़ाईका काफ़ी खयाल रखा जाता था। सभाको अपनी तरफ़से एक पैसा भी नहीं ख़र्च करना पड़ा। ऐसी संस्थाके लिए यह बड़ी बात है।

मद्रासके व्यापारी बधाईके योग्य हैं कि उन्होंने यह शुभ कार्य खुशी और प्रेमके साथ अपने सिर लिया।

सेवाग्राम ८-२-'४६　　अ० कुं०

www.vinoba.in

टिप्पणियाँ

एक बिनती

देशके इतिहासके एक ऐसे नाज़ुक मौक़े पर मैंने 'हरिजन'का काम फिरसे सँभाला है कि एक बार लिखनेका ज़िम्मा ले लेनेके बाद कुछ मामलोंमें अपने ख़यालोंको ज़ाहिर करनेके लिए मैं 'हरिजन'के अगले अंकके निकलने तक रुक नहीं सकता। फिर, जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँसे निकलनेके बजाय वह मुझसे बहुत दूर, अहमदाबादमें, छपता है। इसलिए जो पाठक यह चाहते हैं कि मेरी हर चीज़ 'हरिजन'में ही पढ़ें, वे रोज़ाना अखबारोंमें छपी मेरी चीज़ोंको फिरसे 'हरिजन'में छपी देखें, तो मुझे उसके लिए माफ़ करें। इसकी वजह तो साफ़ है। 'हरिजन' ऐसे बहुतसे पाठकोंके पास जाता है, जो उन अखबारोंको नहीं पढ़ते, जिनमें मेरे बयान छप सकते हैं, और जिनमें छपे बयानोंके बिलकुल सही होनेकी कोई गारण्टी नहीं दी जा सकती। 'हरिजन' किसी भी मानीमें रोज़गारी या व्यवसायी पत्र नहीं है। वह तो हिन्दुस्तानकी आज़ादीके मसलेको आगे बढ़ानेके खयालसे ही निकाला जाता है।

सेवाग्राम, १५-२-'४६

लोक-सेवक और थैलियाँ

सार्वजनिक काम करनेवालोंको दी गई थैलियोंके उपयोगका एक दिलचस्प मामला हाल ही मेरी निगाहमें आया है। मुझे जनताकी ओरसे बहुतसी थैलियाँ मिलती हैं। हालके दौरेमें कलकत्तेसे मदुरा तक दो लाखसे ज़्यादा रक़मका दान मुझे मिला था। कुछ दान देनेवालोंने अपनेको गुमनाम रखा था, कुछ दान किसी एक निश्चित कामके लिए थे और कुछ दानदाताओंने मेरे पूछने पर कहा कि मैं अपनी मर्ज़ीके मुताबिक़ उस रुपयेका उपयोग कर सकता हूँ। मैंने ऐसी कोई सम्पत्ति नहीं रक्खी, जिसे मैं अपनी कह सकूँ। क्या मैं दानकी इन रक़मोंको या इनके कुछ हिस्सेको अपनी निजी ज़रूरतोंके लिए काममें ले सकता हूँ? अपने सार्वजनिक जीवनके दौरानमें मैंने कभी भी दानकी रक़मोंका ऐसा इस्तेमाल नहीं किया और मित्रोंको भी ऐसा ही करनेकी सलाह दी है। जिन लोगों पर जनता विश्वास करती है और जिनको पूरी तरह यह मानकर दान देती है कि वे देनेवालोंकी बनिस्बत रुपयेको ज़्यादा सोच-समझकर और सावधानीके साथ किसी सार्वजनिक काममें लगायेंगे, उनके लिए दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। इस तरहके विश्वासका निजी कामोंके लिए दुरुपयोग करना सचमुच ही एक भयंकर चीज़ होगी। ऐसे दुरुपयोगके जो विनाशकारी परिणाम आयेंगे, उनका बयान करनेके बजाय कल्पना करना ही ज़्यादा अच्छा है। सीज़रकी पत्नीकी तरह सार्वजनिक सेवा भी शंकासे परे होनी चाहिए।

बम्बई, १९-२-'४६

('हरिजन'से) मो० क० गांधी

बेकार ख़र्च

गांधीजी जहाँ भी जाते हैं, वहाँ लोगों द्वारा उनका मनमाना स्वागत तो होता ही है, उन्हें रुपयों और चीज़ोंके रूपमें बेशुमार सौगातें भी मिलती हैं। उनका लोभ कभी तृप्त होना जानता ही नहीं। जैसे वक़्त बीतता जाता है, उनके सिपुर्द की गई रक़मोंको खर्च करनेकी माँग भी बढ़ती जाती है। उन्हें मिलनेवाले रुपये-पैसोंकी छँटनीका काम एक भगीरथ काम है, जो इस सीग़ेमें काम करनेवालोंको घण्टों बझाये रहता है।

चीज़ोंके रूपमें दिये जानेवाले उपहारों या सौगातोंकी वजहसे, जैसे-जैसे सफ़र आगे बढ़ता है, साथी मुसाफ़िरोंके लिए जगहकी तंगी बढ़ती ही जाती है। सूत और खादीके रूपमें दी जानेवाली चीज़ें तो हमेशा ही बड़ी ख़ुशीके साथ ली जाती हैं, क्योंकि गांधीजीके बढ़ते हुए परिवारके लोगोंके लिए और सूत न दे सकनेवाली संस्थाओंके लिए खादीकी तो बेहद माँग है। लेकिन इन सौगातोंमें कुछ ऐसी चीज़ें भी होती हैं, जिनको ठिकाने लगाना मुश्किल होता है, मसलन्, सोने और चाँदीके बने चरखोंके नमूने, और धातु या लकड़ीकी बनी दूसरी बहुतसी बेकार चीज़ें। इस तरहकी चीज़ें भेंटमें न दी जानी चाहियें। सोनेके चरखेमें जितना सोना लगता है, उससे ज़्यादा तो उस पर की गई कारीगरीमें खर्च हो जाता होगा — सोनेसे 'गढ़ावन' महँगी! ऐसी चीज़ें देनेसे अच्छा तो यह है कि नक़द रुपया दे दिया जाय। सूत और खादीके अलावा अपवादके रूपमें कुछ इस तरहकी चीज़ें भी दी जा सकती हैं, जैसे, देहातकी कारीगरीका या पुरानी कलाका कोई सच्चा नायाब नमूना, या वे ज़ेवर, जिन्हें बहनें ख़ुद अपनी इच्छासे गांधीजीको देना चाहें।

सौगातोंकी एक और भी क़िस्म है, जिसको कोई बढ़ावा न मिलना चाहिये, और इनमें गांधीजीकी अपनी वे तस्वीरें, फोटो और लकड़ी, चाँदी, सोना, हाथीदाँत या काँचकी बनी छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं, जिनमें कला नामकी कोई चीज़ नहीं होती। कलाकारोंको और दूसरोंको भी चाहिये कि वे गांधीजीसे उनकी अपनी ऐसी भद्दी तस्वीरों या मूर्तियों पर सही करनेकी उम्मीद न रक्खें। किसी भी क्षेत्रमें हलके दर्जेकी चीज़ोंको बनानेका प्रोत्साहन देना मुनासिब नहीं। और यों जनता चाहे तो वह गांधीजीके अच्छे फोटो आसानीसे पा सकती है।

मद्रास जाते हुए, ४-२-'४६

(अंग्रेज़ीसे) अ० कुँ०

सवाल-जवाब

स० — अनाज बाहरसे जितना ज़्यादा आये, अच्छा है, क्योंकि आजकल लोगोंको जितना दिया जाता है, उससे कम देनेमें जोखिम है। लोगोंको पेटभर खानेको नहीं मिलता। इससे फ़ाक़ाकशी बढ़ सकती है, बीमारी या महामारी फैल सकती है और शायद दंगे भी हो सकते हैं। इस वक़्त नया अनाज पैदा करना अगर नामुमकिन नहीं, तो निहायत मुश्किल है।

ज० — मैं जानता हूँ कि इस तरहके ख़याल रखनेवाले बहुतसे लोग देशमें हैं। मगर मुझ पर इसका असर नहीं हो सकता। फ़ाक़ाकशी या भुखमरी तो इस वक़्त भी मौजूद है। ऐसी हालतमें लोगोंकी ख़ुराकमें कमी करना असह्य हो सकता है। लेकिन अगर हम मान लें (मैं तो मानता हूँ) कि सरकारके पास इस समय अनाजके जत्थेका जो हिसाब है, वह सच है, तो दूरंदेशी हमसे कहती है और यह हमारा धर्म है कि हम कड़ुई घूँट पी जायँ और लोगोंको भी पिलावें और उनसे कहें कि वे आज ही से अपनी ख़ुराकमें कमी कर लें और अगली फ़सलके आने तक किसी तरह काम चलावें। सचाई यह है कि राशनमें मिलनेवाले जिस नाजके लोगों तक पहुँचनेकी बात मानी जाती है, वह भी हुकूमतकी बदइन्तज़ामीकी वजहसे उन्हें नहीं मिलता। अगर अब, बराबर हिसाबके मुताबिक़, सही तरीक़ेसे और आसानीसे लोगोंको अपने-अपने हिस्सेका अनाज मिलने लगे, तो मैं उसे देशका सौभाग्य समझूँगा। इसके ख़िलाफ़ अगर हम यह मान लें कि सरकारी आँकड़े झूठे हैं और चुनाँचे अपने आन्दोलनको ज़ारी रक्खें और ज़्यादा अनाज देनेकी माँग करते ही रहें और सरकार वैसा करना मंज़ूर कर ले, तो इससे पहले कि दूसरी फ़सलके पकने तक हम टिक सकें, ऐसा समय आ जायगा, जब लोगोंको बिलकुल अनाज न मिलेगा और वे बेमौत मरने लगेंगे। इस विकट परिस्थितिका सामना करनेके लिए हमें चौकन्ना रहना चाहिये। और ऐसा करते हुए कुछ कम खानेकी नौबत आये, तो उसे सह लेना मैं मुनासिब समझता हूँ। नया अनाज या दूसरे खाद्यपदार्थ पैदा करना मेरे ख़यालमें ज़रा भी नामुमकिन नहीं है। हाँ, मुश्किल ज़रूर है। और मुश्किल भी इसलिए है कि हममें इस विषयके शास्त्रीय ज्ञानकी और कार्यकुशलताकी कमी है। अगर हम सब आशावादी बनकर, बिना हिम्मत हारे, एक साथ, जो भी अनाज पैदा किया जा सके उसे पैदा करनेमें जुट जायँ, तो इस वक़्त ख़ुराकमें कमी करनेका जो सिलसिला शुरू हुआ है, उसकी मुद्दत भी कम

www.vinoba.in

करने की कोशिश करते हुए मुझसे, जो कुछ मैंने कहा और कहना चाहा था, उससे बिलकुल उलटी बात कहलवा दी है। जो बात सरस, कोमल, सराहनाके रूपमें कही गई थी, उसे एक कठोर कटाक्षका रूप दे दिया गया है। मैंने कहा था कि स्वर्गीय जमनालालजीकी विधवा धर्मपत्नी श्री जानकीबाई अपने स्वर्गीय पतिकी उसी तरह पहली और सच्ची उत्तराधिकारिणी हैं, जिस तरह स्वर्गीय रमाबाई अपने स्व० पति न्यायमूर्ति रानडेकी थीं। इसमें 'अगर-मगर 'का कोई सवाल ही नहीं था। श्री जानकीबाईके बाद उनके बच्चोंका नम्बर आता है। ये अपने कर्त्तव्यमें चूक सकते हैं। हम नहीं। क्योंकि मृतात्माकी स्मृतिका सम्मान करनेके लिए हममेंसे जो वहाँ इकट्ठा हुए थे, वे भी स्व० जमनालालजीके वारिस ही थे, बशर्ते कि हम सच्चे हों। हम अपनी इच्छासे उनके वारिस हैं, किसी रिश्तेदारीकी वजहसे नहीं। मुझे विश्वास है कि अपनी टूटी-फूटी हिन्दुस्तानीमें मैंने जो प्रशंसा कोमल भावसे की थी उसको समझनेमें श्री जानकीबहनने, उनके बच्चोंने, इस काममें लगे हुए भाइयोंने और उन सब मित्रोंने जो उस दिन वहाँ बने पण्डालमें मौजूद थे, कोई भूल न की होगी। ऊँची और समान हेतुवाली सेवाके काममें सभी कोई वारिस हैं, क्योंकि सेवाकी बपौतीका तो पार नहीं। मुझे अपने इस सन्देश पर गर्व था। मगर पराई भाषामें भेजे जानेके कारण इसका सारा मतलब ही खब्त हो गया! अगर इसकी रिपोर्ट हिन्दुस्तानीमें ली और भेजी जाती, तो यह सीधा पाठकोंके दिल तक पहुँचा होता।

मैं उस रिपोर्टको पढ़ नहीं पाया हूँ। मैं चाहता हूँ कि उस सभामें दूसरी जो दो बातें मैंने कही थीं, उन्हें यहाँ थोड़ेमें कहकर उस रिपोर्टको पूरा कर दूँ। मवेशियोंकी हिफ़ाज़तका सवाल हिंदुस्तानका एक बड़ा सवाल है। महज़ भाषण करनेसे या पैसेसे यह हल नहीं हो सकता। यह तो तभी हल हो सकता है कि जब गो-सेवा-संघके पास बहुतसे ऐसे पशुविशारद हों, जो इस मसलेको समझते हों और इसे हल करनेमें लगे हों, और व्यापारी-समाज हो कि जो इस कामको नाम कमाने या धन कमानेका ज़रिया न बनाकर शुद्ध सेवाभावसे करे। अगर ये लोग अपनी सिद्ध बुद्धिका उपयोग पशुओंकी रक्षा करनेमें करें, तो ये हिन्दुस्तानकी बहुत बड़ी सेवा कर सकते हैं। इस प्रश्नकी विशालतासे उन्हें घबराना न चाहिये। हरएक आदमी सोचे कि वह क्या कर सकता है, और जो कुछ करे, पूरी तरह करे, और इसका खयाल न रक्खे कि उसके पड़ोसी या दूसरे लोग कुछ करते हैं या नहीं। इसलिए गो-सेवा-संघके केन्द्रीय दफ़्तरका यह काम है कि वह अपनी ताक़त ज्यादा दूध पैदा करनेमें और वर्धाके हर बाशिन्देको सस्ता दूध पहुँचानेमें लगा दे। आखिर वे देखेंगे कि उन्होंने हिन्दुस्तानके मवेशियोंके सवालको हल कर लिया है।

अन्तमें मैंने उनसे कहा कि श्री अरुणा आसफअलीने जो उलाहना उनको नेक खयालके साथ दिया है उसे वे ध्यानमें रक्खें। उनका कहना था कि कहीं अपने उपकारी इन चौपायोंका विचार करनेमें हम इनके बड़े भाई, हिन्दुस्तानके दो पैरवालोंका, यानी चालीस करोड़ हिन्दुस्तानियोंका खयाल न भूल जायँ, जिनके बिना ये चौपाये एक दिन भी जी नहीं सकते। इसलिए हरएक भले आदमीका अपने तईं और देशके तईं यह फ़र्ज़ है कि वह सिर्फ़ उतना ही खाये, जितना तन्दुरुस्तीके साथ जीनेके लिए ज़रूरी है। मौज-शौक़के लिए कोई एक कौर भी ज्यादा न खाये। हर समझदार औरत, मर्द और बच्चेको चाहिये कि वह देशके लिए कुछ-न-कुछ उगाये, जहाँ पहले एक दाना उगता हो, वहाँ दो उगानेकी कोशिश करे। अगर सब लोगोंने सोच-समझ कर, ईमानदारीसे और मिल-जुलकर हिम्मतके साथ काम किया, तो देखेंगे कि वे आनेवाली मुसीबतका बिना किसी हाय-हायके, बेफ़िक्रीके साथ और बाइज़्ज़त सामना कर सकते हैं।

बम्बई, १८-२-'४६
('हरिजन 'से)

मोहनदास करमचंद गांधी

काम-काजके बीच

दक्षिण भारत-हिन्दी-प्रचार-सभाकी रजत जयन्तीके मौक़े पर मद्रासमें गांधीजीके लिए जो भारी-भरकम कार्यक्रम रखे गये थे, उनके बीच कुछ हलके प्रसंग भी हुए। गांधीजीको सभाओंमें जाते-आते जो चन्द मिनट मिलते थे, वही इन प्रसंगोंका समय था। इसी तरह एक बार गांधीजीसे इण्डोनेशियाके कुछ खलासी मिले। यह इत्तफ़ाक़की बात थी कि जिस समय वे लोग गांधीजीसे मिले, उसी समय इण्डोनेशियाके डच गवर्नर वॉन मूक हॉलैण्डसे बटेविया जाते हुए हवाई जहाज़से मद्रास उतरे थे। इन खलासियोंको कुछ दिन पहले नौकरीसे अलग कर दिया गया था; क्योंकि इन्होंने उस जहाज़ पर काम करनेसे इनकार कर दिया था, जो ऐसे आदमियों और चीज़ोंके साथ बटेविया जा रहा था, जिनका इस्तेमाल राष्ट्रवादियोंकी लड़ाईके खिलाफ़ होता। वे चाहते थे कि अपनी लड़ाईमें उन्हें हिन्दुस्तानकी हमदर्दी और शिरकत या सहयोग मिले। उन्होंने शिकायत की कि इण्डोनेशियनोंको कुचलनेके लिए हिन्दुस्तानी फ़ौजोंका इस्तेमाल किया जा रहा है। गांधीजीने कहा कि हिन्दुस्तानकी हमदर्दी तो उनके साथ है ही। और, यह कांग्रेसकी कार्य-समितिके उस प्रस्तावसे ज़ाहिर है, जो उसने इण्डोनेशिया और दूरके पूरबी देशोंके बारेमें पास किया है। और इण्डोनेशियनोंके खिलाफ़ हिन्दुस्तानी फ़ौजोंका इस्तेमाल तो हिन्दुस्तान और ब्रिटेनके लिए शर्मकी और इण्डोनेशियनोंके लिए बदक़िस्मतीकी बात है। इस हालतका खात्मा हिन्दुस्तानको आज़ादी मिलने पर ही हो सकता है। हिन्दुस्तानकी आज़ादी दुनियाकी सभी पीड़ित और शोषित क़ौमोंकी आज़ादीकी भूमिका होगी।

जेलसे छूटे हुए आज़ाद हिन्द फ़ौजके आदमियोंकी एक टुकड़ी गांधीजीसे मिली। गांधीजीने अपने मुक़ामकी तरफ़ जाते समय उनसे चन्द मिनट बातचीत की। वे लोग वापस अपने-अपने घरोंको जा रहे थे। उन्होंने टोकियोके फ़ौजी विद्यालयमें सैनिक शिक्षा पाई थी। "हमने नेताजीकी रहनुमाईमें काम किया। अब किसके कहने पर चलें?" उन्होंने पूछा। गांधीजीने जवाब दिया कि उन्हें कांग्रेसके आदेशों पर ही चलना चाहिये। उन्होंने कप्तान शाहनवाज़के उस बयानकी ओर उनका ध्यान खींचा, जिसमें उन्होंने कहा है कि जब हम हिन्दुस्तानके बाहर थे, तो अपने देशकी आज़ादीके लिए हथियारोंसे लड़े, अब हम अहिंसाके ज़रिये मुल्ककी खिदमत करेंगे। गांधीजीने कहा: "आपको याद रखना चाहिये कि किसीकी रहमदिलीका आसरा तकना एक सिपाहीकी शान व इज़्ज़तके खिलाफ़ होगा। आज़ादीके सिपाही होनेके नाते आपको अपनी रोटी ईमानदारीका कोई काम करके कमानी चाहिये और ऐसा करते हुए आपको मुसीबतें और तकलीफ़ें उठानी पड़ें, तो भी दूसरे लोगोंकी मददकी इच्छा नहीं करनी चाहिये।"

अखीरमें पश्चिमी अफ़्रीकाके हब्शी सिपाहियोंका एक दल गांधीजीसे मिला। अफ़्रीकाके हब्शी सबसे ज्यादा जागे हुए हैं। उनमें आजकलकी युनिवर्सिटी-शिक्षाका प्रयोग हुआ है और उसके कुछ बड़े तेजस्वी मगर अजीब-से नतीजे निकले हैं। वे लोग सवालोंकी एक लम्बी फ़ेहरिस्त लेकर गांधीजीके पास आये थे। यह इस बातका सबूत था कि उनके दिलोंमें अपने हक़ोंके लिए कितनी गहरी हलचल मची हुई है। उनका पहला सवाल यह था: "दुनियामें कई धर्म हैं। मगर वे सब विदेशोंमें पैदा हुए हैं। उनमेंसे अफ़्रीकावाले किस धर्मको मानें? क्या वे अपने खुदके लिए किसी धर्मकी ईजाद करें? अगर हाँ, तो किस तरह?"

गांधीजीने कहा: "यह कहना ग़लत है कि सब धर्म विदेशोंमें पैदा हुए हैं। ज़ुलू और बण्टू लोगोंके साथ मेरे काफ़ी गहरे ताल्लुक़ात रहे हैं। मैंने देखा कि अफ़्रीकियोंका अपना धर्म है। हाँ, यह हो सकता है कि उस धर्मको उन्होंने तर्ककी कसौटी पर न कसा हो। मैं अफ़्रीकी जातियोंमें पाये जानेवाले रीति-रिवाजों और अन्ध-विश्वासोंका ज़िक्र नहीं करता, मेरा आशय उस धर्मसे है, जो एक सर्व शक्तिमान

www.vinoba.in

परमात्माको मानता है । आप लोग उस ईश्वरकी प्रार्थना करते हैं । सम्प्रदाय तो बहुत हैं, मगर धर्म तो एक ही है । आप लोगोंको उसी धर्मपर चलना चाहिये । विदेशी आपके आगे ईसाई धर्म पेश करेंगे, किन्तु यूरोप और अमेरिकामें आज जो ईसाई धर्म पाया जाता है, वह तो ईसाके उपदेशोंसे बिलकुल मेल नहीं खाता । फिर, हिन्दू धर्म, इस्लाम और ज़रदुश्तका पारसी धर्म वग़ैरा कुछ और धर्म हैं। हरएक धर्ममें कुछ-न-कुछ अच्छी बात है । आपको अपनी पसंदगीको महदूद न करते हुए इन अच्छी बातोंको अपना लेना चाहिये और अपने धर्मका रूप तय कर लेना चाहिये ।

हब्शी सिपाहियोंने गांधीजीके इस कथनका हवाला दिया कि ग़ुलामीमें पड़े रहना इन्सानकी इज़्ज़तके खिलाफ़ बात है । और यह कि जो इन्सान ग़ुलामीको महसूस करते हुए भी अपनी जंज़ीरोंको तोड़नेकी कोशिश नहीं करता, वह जानवरसे भी गया-बीता है । उन्होंने पूछा : "अफ्रीका जैसा महाद्वीप, जिसमें इस क़दर फूट फैली हुई है, ग़ुलामीकी बेड़ियोंको तोड़नेकी लड़ाई कैसे ठान सकता है ?"

गांधीजीने जवाब दिया : "मैं आप लोगोंकी मुश्किलोंको जानता हूँ । अगर यह देखा जाय कि अफ्रीका कितना बड़ा महाद्वीप है, उसके अलग-अलग हिस्से एक-दूसरेसे कितने दूर हैं और उनके बीच कितनी क़ुदरती रुकावटें हैं, लोगोंको बस्ती कितनी फैली हुई है, और उनमें कैसी भयंकर फूट है, तब तो अफ्रीकाकी आज़ादीके लिए कोई उम्मीद नहीं बाँधी जा सकती । किन्तु एक जादू ऐसा है, जो इन सारी मुश्किलोंको हल कर सकता है । जिस घड़ी ग़ुलाम यह इरादा कर लेता है कि अब वह ग़ुलाम नहीं रहेगा, उसी दम उसकी बेड़ियाँ टूट पड़ती हैं । वह ख़ुद अपनेको आज़ाद कर लेता है और दूसरोंको आज़ादीकी राह दिखाता है । आज़ादी और ग़ुलामी मनकी हालतका नाम है, इसलिए सबसे पहले अपने मनमें यह खयाल मजबूत बनाओ : 'अब मैं हरगिज़ ग़ुलाम न रहूँगा; मैं किसीके हुक्मोंको हुक्म समझकर नहीं मानूँगा; बल्कि जो भी हुक्म मेरे दिलके खिलाफ़ होगा, उसे माननेसे मैं इनकार करूँगा' । आपका वह नामधारी मालिक आपको मारेगा-पीटेगा और ज़बरदस्ती काम लेनेकी कोशिश करेगा । किन्तु आप कहेंगे : 'नहीं, मैं आपके रुपयोंकी खातिर या धमकीके अधीन होकर आपका काम नहीं करूँगा ।' इसके नतीजेमें आपको मुसीबतें उठानी पड़ेंगी । मगर मुसीबतको बरदाश्त करनेकी आपकी तैयारी आज़ादीकी ऐसी मशाल जला देगी, जो कभी बुझाई न जा सकेगी । "

"अफ्रीका और हिन्दुस्तान दोनोंको ग़ुलामीकी कड़वी घूँट पीनी पड़ रही है । उसके खिलाफ़ समान मोर्चा खड़ा करनेकी ग़रज़से दोनोंमें एकता क़ायम करनेके लिए क्या उपाय करने चाहिये ?"

गांधीजीने जवाब दिया : "आपका कहना सही है । हिन्दुस्तान अभी आज़ाद नहीं हुआ है, फिर भी हिन्दुस्तानियोंने यह महसूस करना शुरू कर दिया है कि उनकी आज़ादी आ रही है । और यह इसलिए नहीं कि गोरे लोग ऐसा कहते हैं, बल्कि इसलिए कि उन्होंने ख़ुद अपने भीतर ऐसी ताक़त पैदा कर ली है । चूँकि हिन्दुस्तानकी लड़ाई अहिंसक है, इसलिए वह अधिक शक्तिशाली ताक़तके खिलाफ़ तमाम पीड़ित जातियोंकी मुक्तिकी लड़ाई है । मैं यह नहीं कहता कि वे सब यांत्रिक रूपमें मिलकर कार्रवाई करें । 'हरएकको अपनी मुक्ति ख़ुद ही खोजनी होगी;' परलोककी मुक्तिके समान ही इस लोककी मुक्तिके लिए भी यह सच है । इतना काफ़ी होगा कि एशियावालों और अफ्रीकियोंके बीच सच्चा नैतिक रिश्ता रहे । समयके साथ वह मज़बूत होता जायगा ।"

हब्शी सैनिकोंका अगला सवाल यह था : "अनैतिकसे अनैतिक और भयंकरसे भयंकर बातें अफ्रीकाके मत्थे थोपी जाती हैं । विदेशोंमें हमारे खिलाफ़ ग़लतफ़हमीकी जो महामारी फैली हुई है, उसे दूर करनेके लिए क्या किया जाय ?"

गांधीजीने जवाब दिया : "अफ्रीकियोंके खिलाफ़की जानेवाली आलोचनामें जहाँ तक सच्चाईका अंश है, वहाँ तक कहना होगा कि यह कोई अफ्रीकाकी ही खास विशेषता नहीं है । अनीति और अन्याय सभी देशोंमें समान रूपसे पाये जाते हैं । किन्तु आप लोगोंको यह कहकर आत्म-सन्तोष नहीं मान लेना चाहिये : 'दूसरे हमसे अच्छे कहाँ हैं ?' जिन बुराइयोंको लेकर हब्शियोंके खिलाफ़ ग़लत खयाल फैले हुए हैं, उनमेंसे बहुत-सी, शायद ज़्यादातर, अमेरिकासे आई नाम मात्रकी ईसाइयतके कारण पैदा हुई हैं । हब्शियोंने शराब पीना, अनैतिक नाच नाचना आदि बुराइयोंको सीख लिया है । फिर कुछ बुरे अफ्रीकी रिवाज भी हैं । आप लोगोंको इन बुरे रिवाजोंको दूर करना चाहिये और इस तरह विदेशोंमें फैले ग़लत खयालोंके आधारको ही मिटा देना चाहिये । काम तो यह मेहनतका है, पर है बहुत मज़ेदार । तब विदेशोंमें फैली ग़लतफ़हमीकी महामारी अपनी मौत ख़ुद ही मर जायगी ।"

हब्शी सिपाही यह जानना चाहते थे कि हिन्दुस्तान-सम्बन्धी उपयोगी किताबें रखनेके भण्डार वे किस तरह क़ायम कर सकते हैं, हिन्दुस्तान उन्हें क्या दे सकता है और उनका जो भयंकर शोषण हो रहा है, उससे बचनेके लिए सहयोगके आधार पर वे अपने देशमें कैसे उद्योग-धन्धे क़ायम कर सकते हैं ?

गांधीजीने जवाब दिया : "हिन्दुस्तान आपको अच्छे विचार दे सकता है। वह आपको सारे संसारका भला करनेवाली किताबें दे सकता है । पश्चिमी शोषक कच्चा माल लेकर तैयार माल देते हैं, हिन्दुस्तान ऐसा धन्धा न करेगा । हिन्दुस्तान और अफ्रीकाके बीच विचारों और सेवाकी अदला-बदली होगी । हिन्दुस्तान आपको चरखा दे सकता है । जब मैं दक्षिण अफ्रीकामें था तब मुझे चरखेका ज्ञान हो गया होता, तो मैंने उन अफ्रीकियोंमें जो फिनिक्समें मेरे पड़ोसी थे, उसका प्रचार ज़रूर किया होता । आप लोग कपास पैदा कर सकते हैं, आपके पास काफ़ी वक़्त है और आप लोग हाथसे काम करनेकी कला भी जानते हैं । देहाती धन्धोंको फिरसे जिलानेकी हम जो कोशिश कर रहे हैं, उसका आपको अध्ययन करना चाहिये और उससे सबक़ सीखना चाहिये । आपकी मुक्तिकी कुंजी इसीमें छिपी है ।

सेवाग्राम, ८–२–'४६

('हरिजन'से) प्यारेलाल

मुर्दार और ज़िन्दा सूत

तुम प्रतिज्ञाके तौर पर प्रतिदिन १०–१५ तार कातने लगे हो, इसमें मेरी कोई विजय नहीं है । रोती सूरतके घोड़े पर सवार होनेसे विजय क्या मिलनेवाली है ? इससे तो वह घोड़े पर सवार ही नहीं होगा, तो बेचारा कम-से-कम कुशलसे तो रहेगा । जब कि हमारी बुद्धिने उसका स्वीकार न किया तो बतौर बेगारके १०–१५ तार कात लेना अपने आपको धोखा देनेका एक तरीक़ा है । स्वराज्यका सूत कातनेसे सम्बन्ध तो है, मगर ऐसे मुर्दार सूतसे नहीं । उसके लिए तो ज़िन्दा सूत चाहिये ।

संप्रति हमारे देशको मतभेदोंने ग्रस लिया है । जर्मनीमें सात लाख फ़ौज तैयार हो जाती है, और हमारे यहाँ "पिण्डे-पिण्डे मतिर्भिन्ना; कुण्डे-कुण्डे नवं पयः" के न्यायके अनुसार छोटी-छोटी खोपड़ियोंका भी गांधीजी-जैसोंसे मतभेद हुआ करता है ।

मेरी तो यह सलाह है कि प्रतिज्ञाका अर्थात् प्रतिज्ञाकी आत्माका पालन करना हो, तो तुम्हारे जैसे देशके हितके लिए तड़पनेवाले तरुणको खादीका विद्यापीठ बन जाना चाहिये । प्रत्येक ग्रहके इर्दगिर्द जिस प्रकार उस ग्रहका अपना वातावरण होता है, उसी प्रकार तुम्हारे चारों ओर खादीका स्वतंत्र वातावरण होना चाहिये ।

('खादी-जगत्'से) विनोबा

www.vinoba.in

साप्ताहिक पत्र

गांधीजीको लोगोंकी भीड़का अध्ययन करना बहुत प्रिय है। यह भीड़ बच्चों-सी सरल, चंचल, और मनचली होती है और जब क्षुब्ध हो जाती है, तो कभी-कभी पिंजड़ेमें बंद जानवरकी तरह अपना तौल खो बैठती है, खतरनाक बन जाती है। कभी-कभी लोगोंकी अविवेकपूर्ण पूजा या भक्तिसे गांधीजीको बचा लेना ज़रूरी हो गया है। लेकिन जिस तरह एक माँ अपने मनचले बालकको छोड़ नहीं सकती, उसी तरह गांधीजी भी जनसमूहको छोड़ नहीं सकते।

अब, जब कि आज़ादी नज़दीक है, लोगोंकी भीड़को तालीम देना और अनुशासन या निज़ाम सिखाना एक बहुत ही महत्त्वकी चीज़ बन गई है। इधर यह सवाल लगातार गांधीजीके मनमें उठा करता है कि लोग आज़ादीके पहले धक्केको किस तरह बरदाश्त करेंगे? — उसके प्रथम साक्षात्कारका उन पर क्या असर होगा? उनके इस उमड़ते हुए उत्साह और उनकी इस भक्तिका अन्त क्या होगा? अहिंसा या हिंसा? जब तक उनको अहिंसक दृष्टिसे भलीभाँति संगठित करके तैयार नहीं किया जाता, वे आज़ादीसे बहुत फ़ायदा नहीं उठा सकेंगे और मुमकिन है कि आज़ादी उनके लिए एक शंकास्पद वरदान बन जाय। इसलिए अबकी गांधीजीने कलकत्तेसे मद्रास तक की अपनी यात्राको जनसमूहके व्यवहारका अध्ययन और निरीक्षण करनेकी यात्रा बना लिया था।

यह तो जानी हुई बात है कि गांधीजीके दिलमें उड़ीसाके लिए एक खास ममता है, क्योंकि उड़ीसा भारतमाताका 'अनाथ बालक' है। यात्राके प्रबन्धकोंने तय किया था कि रातमें गाड़ी कहीं भी न ठहराई जाय। लेकिन गांधीजीने उड़ीसाके कई स्टेशनों पर खास तौरसे गाड़ी ठहरवाई। उस दिन आधी रातके क़रीब हम कटक पहुँचे। वहाँ लोगोंकी एक बड़ी भीड़ इकट्ठा हो गई थी और गांधीजीको भाषण करनेके लिए ले जाया गया था। वहाँ पहुँच कर गांधीजीने जो कुछ देखा, उससे उन्हें बहुत ही दुःख हुआ। लोग अव्यवस्थित थे और शोर मचा रहे थे। गांधीजीने उनको अपनी व्यथा कह सुनाई। वे बोले कि उन्हें इस बातका बहुत ही अफ़सोस है कि जिस उड़ीसाको वे इतना ज़्यादा चाहते हैं, और जहाँ उन्होंने पैदल चलकर हरिजन-यात्रा की थी, वहाँ लोग उनकी उम्मीदोंको इस तरह झुठलायें। क्या यही उनकी अहिंसा है? या क्या वे यह सोचते हैं कि इस तरहकी अनुशासन-हीनता और हुल्लड़बाजीसे आज़ादी हासिल की जा सकेगी या टिकाई जा सकेगी? अगर वे ऐसा सोचते हैं, तो सचमुच बहुत ग़लत सोचते हैं। क्या अणु बमके मुक़ाबलेमें, जो पाशवी शक्तिकी पराकाष्ठाका सूचक है, अपनी इस अनुशासनहीनता और हुल्लड़बाजीको पेश करके हम अपनी हँसाई ख़ुद न करेंगे? अब वक़्त आ गया है, जब उन्हें इन दो रास्तोंमेंसे किसी एकको चुननेका निश्चय कर लेना चाहिये। अगर वे समझते हैं कि अहिंसामें अब कोई दम नहीं रह गया है, तो उन्हें उसे छोड़ देनेकी पूरी आज़ादी है। लेकिन अगर मुँहसे अहिंसाकी बात करते हुए वे मनमें हिंसाकी बात सोचते हैं, तो वे अपनेको और दुनियाको धोखा देने और ठगनेके अपराधी ठहरते हैं। और उन्होंने कहा: "मुझे न तो आप लोगोंके स्वागतभरे जय-जय-कारकी ज़रूरत है, और न रुपये-पैसोंकी। लेकिन मैं यह चाहता हूँ कि आपके अंदर जो झुठाई घुस गई है, उसे आप निकाल डालें। आपके उपहारोंसे मुझे इतनी ख़ुशी नहीं होगी, जितनी इस एक कामसे होगी। आपके हल्ला मचानेसे तो मुझे कभी ख़ुशी हुई नहीं, न कभी होगी।"

लेकिन बरहामपुरने कटककी कमीको कुछ पूरा किया। बाक़ीके सफ़रमें भी जहाँ-जहाँ गाड़ी ठहरी, लोगोंकी भीड़ उमड़ती ही नज़र आई। वॉल्टेरसे दिनका सफ़र शुरू हुआ। लोगोंकी उस प्रचंड भीड़को, जो दूर-दूरसे चलकर और खराब मौसमकी मुसीबतोंको झेलकर भी अनन्य भक्तिके साथ वहाँ एकत्र हुई थी, देखना भी अपने-आपमें एक दर्शन था — एक साक्षात्कार! लोग हरिजनोंकी सेवाके लिए गांधीजीके कटोरेमें अपना पाई-पैसा लगातार खुले हाथों डालते चले जाते थे। इस तरह जो रक़म इकट्ठा हुई उसे गिननेमें श्री कनु गांधीको और उनके ४० साथियोंको मद्रासमें अपने दो दिन और दो रातका अधिकतर समय लगाना पड़ा। इस रक़ममें ३,८९५ रुपयोंके सरकारी नोट और ५४,६०८ सिक्के थे। इस तरह सारी यात्रामें कुल रु० ५५,०७१-७-३ इकट्ठा हुए थे। सेवाग्राम, १३-२-'४६ (क्रमशः)

('हरिजन'से) प्यारेलाल

ईश्वरका अर्थ

"आजकल आपकी लिखी 'गीताबोध' पढ़ रहा हूँ, और उसे समझनेकी कोशिश करता हूँ। 'गीताबोध' के दसवें अध्यायको पढ़नेके बाद जो सवाल मेरे मनमें उठा है, उसीके सिलसिलेमें यह ख़त लिख रहा हूँ। उसमें लिखा गया है कि श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं: "अरे, छल करनेवालोंका द्यूत भी मुझीको समझ। इस संसारमें जो भी कुछ होता है, सो मेरी इजाज़तके बिना नहीं हो सकता। भला, बुरा भी तभी होता है, जब मैं होने देता हूँ।" तो क्या भगवान् बुरा भी होने देता है? और जब यह चीज भगवान्‌की इजाज़तसे होती है, तो वह इसका बदला बुराईके रूपमें कैसे दे सकता है? क्या परमात्माने संसारकी उत्पत्ति इसीलिए है? क्या संसारका समय शान्तिपूर्ण वातावरणमें कभी बीत ही नहीं सकता?"

एक पत्र-लेखकने यह सवाल पूछा है। यह कहना कि बुराईका मालिक भी ईश्वर है, कानोंको कठोर लगता है। लेकिन अगर वह अच्छाईका मालिक है, तो बुराईका भी है ही। रावणने अनहद ताक़त दिखाई, सो भी ईश्वरने दिखाने दी तभी न? मेरे खयालमें इस सारी उलझनकी जड़ ईश्वर-तत्त्वको न समझनेमें है। ईश्वर कोई पुरुष नहीं, व्यक्ति नहीं। उसे कोई विशेषण लगाया नहीं जा सकता। ईश्वर ख़ुद ही क़ायदा, क़ायदा बनानेवाला और क़ाज़ी है। दुनियामें हमें यह चीज़ इतनी सुसंगत रीतिसे कहीं देखनेको नहीं मिलती। लेकिन जब कोई आदमी ऐसा करता है, तो हम उसे शाहंशाह नीरो (शैतान)के रूपमें देखते हैं। मसलन्, हिन्दुस्तानका वाइसराय ख़ुद क़ायदे बनानेवाला, क़ायदा और क़ाज़ी है। मनुष्यको यह स्थिति शोभा नहीं देती। लेकिन जिसे हम ईश्वरके रूपमें पूजते हैं, उसके लिए तो यह न सिर्फ़ ज़ेबा है, बल्कि असलमें हक़ीक़त भी यही है। अगर हम इस चीज़को समझ लें, तो इस खतमें जो सवाल उठाया गया है, उसका जवाब मिल जाता है, या यों कहिये कि फिर वह सवाल उठ ही नहीं सकता।

दुनिया अपना समय शान्तिमय वातावरणमें बिता ही नहीं सकती, यह सवाल भी खड़ा नहीं हो सकता। जब दुनिया चाहेगी तब वातावरण भी शान्तिमय हो जायगा। यह सवाल तो उठना ही न चाहिये कि दुनिया कभी ऐसा चाहेगी या नहीं, या चाहेगी तो कब चाहेगी। ऐसे सवाल उठाना मेरे खयालमें निठल्लेपनकी निशानी है। 'आप भला, तो जग भला'के अनुसार सवाल पूछनेवाले ख़ुद हर हालतमें शान्ति रख सकें, तो उन्हें समझ लेना चाहिये कि जो काम वे ख़ुद कर सकते हैं, सो सारी दुनिया कर सकेगी। ऐसा न माननेका मतलब होगा कि वह बड़े अभिमानी हैं।

('हरिजनबन्धु'से) मोहनदास करमचंद गांधी

नई किताबें

	मूल्य	डाकखर्च
रचनात्मक कार्यक्रम — उसका रहस्य और स्थान (नई और सुधारी हुई आवृत्ति) (गांधीजी)	०-६-०	०-१-०
गो-सेवा — (गांधीजी)	१-८-०	०-५-०
हमारी बा — उनकी जीवन-कस्तूरी (वनमाला परीख और सुशीला नय्यर)	२-०-०	०-६-०
हफ़्तेमें उर्दू — (श्रीपाद जोशी)	०-७-०	०-१-०

www.vinoba.in